जे.पी. आन्दोलन और सामाजिक शक्ति संतुलन में आए बदलाव का पुनर्मूल्यांकन : एक एतिहासिक परिप्रेक्ष्य

NAVEEN CHANDRA KUMAR
Research Scholar
UGC-NET,
Department of History,
B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur.

Abstract :

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपने आंदोलन के माध्यम से जहां देश की सत्ता को उखाड़ फेंका था वहीं बिहार की राजनीति को भी नई दिशा दी थी। इस आंदोलन की घटनाएँ जितनी महत्वूपर्ण हैं, उतने ही उसके विचार और आंदोलन जिन मुद्दों के ऊपर शुरू हुआ था उससे कहीं अधिक गहराई में जाकर सामाजिक परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ रहा था। तभी जयप्रकाश नारायण ने इसे 'संपूर्ण क्रांति' कहा और जब संपूर्ण क्रांति की व्याख्या करने की बात आई तो उन्होंने स्पष्ट किया कि डॉ. राममनोहर लोहिया की सप्त क्रांति है। वहीं, जनता सरकार की बात भी उन्होंने की। जनता सरकार गांधी के ग्राम स्वराज्य एवं ग्राम स्वावलंबन की दिशा में उठाया गया कदम था। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से जेपी आंदोलन के परिणामस्वरूप बिहार की सामाजिक आंदोलन और राजनीति तथा जातीय शक्ति संतुलन में हुए बदलाव का पुनर्मूल्यांकन करना हैं तथा साथ ही वर्तमान में इस आंदोलन के महत्व का परिक्षण करना हैं।

Keywords : संपूर्ण क्रांति, स्वराज्य, जनता, सरकार, ग्राम स्वावलंबन।

Discussion:

1994 में 74वें संविधान संशोधन के बाद भी पंचायती राज व्यवस्था को वे सब अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है, जिनकी कल्पनाएँ उस समय की जनता सरकार के प्रयोग में शामिल की गई थी। 'ग्रामसभा' को विधानसभा और लोकसभा की तरह मजबत करने की बात जना सरकार के प्रयोग में शामिल थी। हालाँकि यह इतर बात है कि आंदोलन के गर्भ से पैदा हुई सरकार ने भी इस दिशा में कुछ नहीं किया। लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा करनेवाला बिहार आंदालन जो क्रांतिकारी स्वरूप ले रहा था, वह इमरजेंसी लागू होने के कारण बीच में ही रूक गया। तानाशाही के चंगुल से देश को मुक्त करना आपद धर्म बन गया। इसके बाद क्रांति के उद्देश्य गौण हो गए और सत्ता का खेल प्रधान हो गया। इमरजेंसी के बाद बनी जनता पाटी की सरकार ने आंदोलन के क्रांतिकारी मुद्दों को एकदम भुला दिया। ऐसे तो बिहार आंदोलन के दौरान ही विधायकों के इस्तीफे के सवाल पर राजनीतिक पार्टियों का 'लोकतंत्र पेरम' जाहिर हो गया था। जनता पार्टी की सरकार के तीन दिग्गजों–मोरारजी देसाई, चौधरी चरण सिंह एवं जगजीवन राम का तो बिहार आंदोलन से कोई लेना–देना ही नहीं था। केंद्र और बिहारी की जनता पाटी की सरकार के गठन के कुछ ही महीनों बाद उनकी कारवाईयों से जेपी उदासीन रहने

लगे थे। 4 अगस्त, 1977 की 'सामायिक वार्त्ता' के साथ बातचीत में जेपी की जनता सरकार के प्रति उदासीन रहने लगे थे। 4 अगस्त, 1977 की 'सामायिक वार्त्ता' के साथ बातचीत में जेपी की जनता सरकार के प्रति उदासीनता पहली बार सामने आई।

वार्त्ता के एक प्रश्न के उत्तर में जेपी ने जनता से सरकार को रचनात्मक सहयोग की अपील करते हुए क हा, ''अगर सरकार घोषणा–पत्र के वायदे पूरा नहीं करती है तो उसका विरोध करना ही होगा'' जब 'वार्त्ता' ने पूछा कि इसके लिए सरकार को कितना समय दिया जा सकता है तो जेपी का उत्तर था– ''एक साल काफी है।'' वार्त्ता ने जब जानना चाहा कि सरकार के लोग क्या आपसे परामर्श क रते हैं, इस पर जेपी का बयान चौंका देने वाला था– ''जब से दिल्ली में सरकार बनी है, तब से आज तक सरकार और उसके किसी आदमी ने मुझसे सलाह नहीं ली है। न बिहार की सरकार ने ली है और न दिल्ली की सरकार ने।'' देश में यह भावना घर कर रही है कि गांधीजी की तरह ही सरकार आपकी अवहेलना कर रही है, वार्त्ता के इस प्रश्न के उत्तर में जेपी कहते हैं – ''जो कहिए, हमसे उनका संपर्क ही नहीं है, सलाह लेने की बात उठती नहीं है। सलाह देने का न मेरा कोई अधिकार है, न इसके बारे म ें मेरी कोई शिकायत है।'' इस बयान के बाद जनता पार्टी के नेताओं का पटना आना–जाना तो शुरू हुआ, किंतु उनके (जेपी) परामर्श पर सरकार चलाने को जनता पाटी के नेता तैयार नहीं हुए। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने जेपी के बयान के कुछ ही दिनों बाद पटना आकर उनसे भेंट तो की, किंतु सत्ता की हैकड़ी इतनी कि वे अपनेा बयान से परिवर्तन चाहनेवाले जेपी समर्थकों को और भी नाराज कर चले गए। जनता पार्टी की सरकार के ऊपर बिहार आंदोलन और जयप्रकाश नारायण का प्रभाव नहीं रहा। नतीजन थोड़े ही दिनों में सरकार के मंत्रियों के भ्रष्ट आचरण और जन विरोधी नीतियाँ सामने आने लगीं। नेताओं का आपसी मतभेद और स्वार्थ इतना बढ़ा कि चंद महीनों में सरकार गिर गई। 1974–75 से अब तक के इन चालीस वर्षों में देश की तरक्की हुई है, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन जैसे–जैसे देश तरक्की कर रहा है, वैसे–वैसे समस्याएँ और भी ज्यादा जटिल होती चली जा रही हैं। गरीबी–अमीरी का फासला बेहिसाब बढ़ा है। गरीबी और बेरोजगारी में भारी इजाफा ह ुआ है। शिक्षा महँगी हुई है। महँगाई आसमान छू रही है। और भ्रष्टाचार! नीति नए हजारों–लाखों करोड़ के घोटाले सामने आ रहे हैं। ऐसे में जेपी जैसे आंदोलन की प्रासंगिकता को भला कौन नकार सकता है। देश उबल रहा है। परिस्थितियाँ इतनी विस्फोटक होती चली जा रही हैंकि एक व्यापक जनांदोलन का महाविस्फोट निकट भविष्य में संभावी लगता है। 1974–75 के दौर की रपटों एवं लेखों को पढ़ते वक्त पाठक महसूस करेंगे कि उस समय से आज कितनी ज्यादा भयानक स्थिति है। फिर भी प्रतिरोध की वह स्थिति पैदा नहीं हो पा रही जो कि उस समय थी। आंदोलन की फिजा बन–बनकर विसर्जित होती जा रही है। तो क्या माना जाए कि सरकार पहले से कहीं अधिक निरंकुश हो गई है? या फिर इसका मुख्य कारण एक अदद जयप्रकाश जैसे विश्वसनीय एवं अनुभवी नेतृत्व का अभाव है।

बिहार आंदोलन के बड़े मुद्दों में भ्रष्टाचार भी शामिल था। यह बात सही है कि आज के भ्रष्टाचार का जो आकार है उस उस समय नहीं था। फिर भी जेपी भ्रष्टाचार से ही ज्यादा उद्वेलित थे। भ्रष्टाचार पर बोलते हुए जेपी कहते हैं– ''मैं वर्षों से भ्रष्टाचार के बारे में लिख रहा हूँ, कह रहा हूँ।

इंदिराजी से भी इस मुद्दे पर बातचीत हुई। मैंने सभी सांसदों को सर्वोच्च न्यायालय और मौलिक अधिकारों के बारे में छपा हुए एक पत्र भेजा था। भ्रष्टाचार दूर करने के सुझाव दिए थे। दल–बदल का विधेयक छह वर्षो से लटका है। लोकपाल वाला विधेयक लगभग एक दशक से लटका पड़ा है। चुनाव खर्च का मामला लें। राजनीति बड़े भ्रष्टाचार की जड़ है। कालाबाजारियों से पैसे इकट्ठे किए जाते हैं। इसका कोई हिसाब नहीं होता।'' भ्रष्टाचार से उद्वेलित जयप्रकाश कहते हैं – ''भ्रष्टाचार सारे समाज में व्याप्त हो गया है। भ्रष्टाचार नेहरू के समय में भी था और शास्त्रीजी के जमाने में भी। पर अब वह सीमा पार कर गया है। 103–4 डिग्री बुखार होता है तो आदमी मरता नहीं, पर 107–8–10 डिग्री होने पर मौत हो जाती है।'' एक महती जनसभा में बोलते हुए जेपी कहते है – ''कांग्रेस अध्यक्ष शंकरदयाल शर्मा ने कहा कि भ्रष्टाचार के सुनिर्दिष्ट आरोप बताओ? लोग व्यापारियों और सरकार के बीच हुए गुप्त सौदों के बारे में कैसे जान सकते हैं? पर वे अपने घ्राण (सिकस्थ सेंस) शक्ति से जान लेते हैं कि कौन भ्रष्टाचारी है और कौन नहीं।'' आंदोलन के दौरान जेपी को फासिस्ट कहा गया। लोकतंत्र का दुश्मन होने के आरोप लगाए गए। देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर बाते करते हुए जेपी कहते हैं – ''हमारे देश में लोकतंत्र जरूर कायम हुआ, पर उसका वह ढाँचा नहीं बना (इंफ्रास्ट्रक्चर),ख जिस पर वह टिका रहता है और अपने को पुष्ट करता रहता है। लोकतंत्र को टिकोए रखने के चार खंभे हैं – प्रेस, न्यायपालिका, जनमत और राजनीतिक दल। हमारे देश में इन चारों का इस तरह विका नहीं हो पाया है कि वे सत्ता और शासन पर अंकुश रखें।'' जयप्रकाश ने विस्तार से बताया कि प्रेस किस प्रकार अंकुश रखता है? निक्सन दुनिया के आज सबसे ताकतवर आदमी हैं, पर अमरीकी प्रेस ने उनकी नींद हराम कर दी है; हमारे देश में न्यायपालिक का हाल यह है कि प्रधानमंत्री की मरजी से मुख्य न्यायाधीश नियुक्त होता है; जनमत को तो हमारे यहाँ खुलकर खेलने का मौका ही नहीं मिलता; राजनीतिक पाटियों का यह हाल है कि इंग्लैंड और अमरीका की तरह उनसके अकेले सत्तारूढ़ होने की उम्मीद ही नहीं है। 1967 में उन्ळोंने मिलकर कई राज्यों में सत्ता ग्रहण की पर वह प्रयोग विफल रहा। 1971–72 के चुनावों में कांग्रेस इंदिरा गांधी के करिश्मे या चमत्कारी व्यक्तित्व के कारण इतना नहीं जीती, जितना कि 1967 के प्रयोग की विफलता के कारण। लोकतंत्र में जो दोष पैदा होते हैं वे प्रेस, न्यायपालिका, जनमत और राजनीतिक पार्टियों के दबाव से मिटते जाते हैं और सत्ता सर्वग्रासी नहीं हो पाती। लेकिन हमारे देश में ऐसा ढाँचा कायम नहीं हो पाया है। इसलिए सत्ता सर्वग्रासी होती जा रही है। ऐसे में आम आदमी क्या करें? क्या उसने चुनावों में यह देख नहीं लिया है कि पैसे और लाठी के बल पर तमाम पाप किए जा सकते हैं? क्या वह चुपचाप पाँच साल तक सहता रहे और तमाशा देखता रहे?

यह आरोप लगाया जाता है कि बिहार का आंदोलन लोकतंत्र के खिलाफ है। जब लोकतंत्रा के संवैधानिक तरीकों से जनता अपनी समस्याओं का निराकरण करने में असमर्थ हो जाए तो क्या करे? लोकतंत्रा की रक्षा करने के लिए उसके पास बस एक चारा रह जाता है कि वह अपनी शक्ति को प्रदर्शित करे। बिहार का आंदोलन लोकतंत्र को नष्ट करने का नहीं, उसकी रक्षा करने का आंदोलन है'' आंदोलन के दौरान ''हिंसा–अहिंसा के सवाल पर खूब बहसें हुईं। नक्सलियों से जब जेपी ने समर्थन माँगा तो विवाद और गहरा हो गया। तब आंदोलन के दौरान हिंसा–अहिंसा के सवाल पर जेपी अपना

विचार रखते हुए कहते हैं – ''हिंसा और अहिंसा के सवाल में मैं माथा खपाना नहीं चाहता। जो सशस्त क्रांति करना चाहते हैं, उन्हें मैं रोकता नहीं। लेकिन उन्हें यह जरूर कहना चाहता हूँ कि छिटपुट हिंसा का मतलब तानाशाही बुलाना होगा।'' जेपी ने सशस्त्र क्रांति के बारे में और साफ ढ़ंग से राय प्रकट करते हुए कहा कि ''माओ की यह बात सही है कि ताकत बंदूक की नली में होती है, पर बंदूक भी कुछ लोगों के हाथों में रहती है, सबके नहीं । रूस और चीन में क्रांति हुई, पर वहाँ कुछ ही लोगों के हाथों में बंदूक थी और जिन लोगों के हाथ में थी उन्हीं का शासन कायम हुआ। इस तरह देखें तो वहाँ भी क्रान्ति नहीं हुई।'' आंदोलन के दौरान बार–बार जेपी के दलविहीन लोकतंत्र की अवधारणा पर भी सवाल उठाए गए। कांग्रेस ने आरोप लगाया कि बिहार आंदोलन का उद्देश्य दल विहीन लोकतंत्र कायम करना है। जेपी की संसदीय लोकतंत्र में आस्था नहीं है। इसका जबाब देते हुए जेपी कहते हैं कि ''दलविहीन लोकतंत्र की अवधारणा मार्क्सवाद और गांधीवाद दोनों में ही है। सर्वोदय आंदोलन का प्रारंभ से ही यह लक्ष्य रहा है। लेकिन वह एक दूरगामी लक्ष्य होने की बात हाल में मैंने कही है। मेरा यह विश्वास है कि जब तक हम वर्गविहीन समाज स्थापित करने में सफल नहीं होते तब तक दलविहीन लोकतंत्र कायम नहीं किया जा सकता। बिहार के मौजूदा आंदोलन का दलविहील लोकतंत्र से कोई ताल्लुक नही।'' फिर संसदीय लोकतंत्र की सीमाओं को रेखांकित करते हुए जेपी कहते हैं – ''अभी निर्वाचित प्रतिनिधियों के कार्यों पर नियंत्रण रखने का कोई उपाय नहीं है। राजनीतिक दल यह काम नहीं कर सकते, क्योंकि यह उनके स्वभाव के अनुरूप नहीं। हम एक पिछड़े देश में लोकतंत्र का प्रयोग कर रहे हैं, जिसमें विकसित देशों जैसा लोकतंत्र का भीतरी व आधारभूत ढाँचा नहीं बन पाया है। ऐसा ढाँचा लोकतंत्र पर किए जानलेवा हमले को झेल लेता और लोकतंत्र को मरने नहीं देता। हमले को रोकने के लिए विकसित देशों के ढाँचे में प्रतिरोधक शक्तियाँ होती हैं। हमारे देश में जनमत सजग और सतर्क नहीं है और वह जैसा भी है उसकी भी परवाह नहीं की जाती। हमारे देश में दलीय प्रणाली संतुलित नहीं, अध्यापक–शिक्षक और विद्वानों का समाज स्वतंत्र नहीं, उनकी अपनी अलग सत्ता नहीं और प्रेस भी आजाद नहीं। ये सार्वजनिक जीवन पर असर नहीं डाल पाते। हमारे यहाँ लोकतांत्रिक प्रणाली की सरकार जरूर है, लेकिन वह सराहनीय है। इसको सारवान बनाने के लिए मैं चाहता हूँ कि लोकशक्ति के केंद्रों के माध्यम से जनता का नियंत्रण स्थापित किया जाए। तुरंत लोकतांत्रिक समाज का संपूर्ण भीतरी और आधारभूत ढाँचा खड़ा करना संभव नहीं। इसमें समय लगेगा। लेकिन बिहार में छात्र और जनसंघर्ष समितियों के रूप में लोकशक्ति का एक केंद्र उभर रहा है, जो उम्मीदवारों के क्रम को प्रभावित करेगा और निर्वाचित प्रतिनिधियों पर निगरानी रखेगा, उन पर अंकुश रखेगा। इससे देश में संसदीय लोकतंत्र मजबूत होगा। लोकतंत्र में आस्था रखने वाले सभी व्यक्तियों को इससे खुश ही हइोना चाहिए। कांग्रेस के नए अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने कहा कि मेरी संसदीय लोकतंत्रा में कभी आस्था नहीं रही। यह सही है कि संसदीय लोकतंत्र में बहुत सारी खामियाँ है, वह छिद्रों से भरा पड़ा है। लेकिन चरचिल की तरह मैंने यह भी कहा है कि जब तक हम इससे बेहतर कोई चीज नहीं दे पाते तब तक यही सरकार चलाने का सबसे अच्छा तरीका है। सर्वोदय–विचारधारा में ग्रामीण लोकतंत्र की बात कही गई है। गाँवों और छोटी–छोटी बस्तियों में स्थापित प्रत्यक्ष लोकतंत्र के आधार पर एक सामाजिक राजनीतिक ढाँचा बन पाया तो वह संसदीय

लोकतंत्र से बहुत ज्यादा सुधरी चीज होगी। कोई भी प्रणाली संपूर्ण नहीं होती, दोषरहित नहीं होती। हमारी कोशिश यह रहती है कि आंशिक और दोषपूर्ण व्यवस्था से संपूर्ण और निर्दोष व्यवस्था की तरफ बढ़ते चले।'' जेपी राजनीतिक दलों की सीमाओं को बखूबी जानते थे। तभी तो उन्होंने विरोधी राजनीतिक दलों के सम्मेलन में स्पष्ट रूप से कहा– ''बिहार की लड़ाई को विपक्षी दलों और सत्तारूढ़ दल के बीच संघर्ष मानना, एक जबरदस्त भूल होगी। बिहार में आज जो हो रहा है उसमें एक तरफ छात्र–शक्ति व जन–शक्ति है तो दूसरी तरफ राज्य–शक्ति। यह सत्ता पर कब्जा करने या कांग्रेस की सरकार की जगहर विपक्षी सरकार बैठाने के लिए लड़ी जानेवाली लड़ाई नहीं है। यह तो सरकार और राजनीति की गंदगी दूर करने और सत्ता पर अंकुश रखने व उसे नियमित करने के औजार गढ़ने और परिस्थितियाँ पैदा करने की लड़ाई है; सत्ता पर अंकुश वर नियंत्रण रहे, भले ही कोई भी पार्टी या पाटियाँ इस वक्त सत्तारूढ़ क्यों न हों।'' फिर वे अपने बारे में कहते हैं – ''मैं जो कुछ कर पा रहा हूँ वह इसलिए कि मैं किसी भी पार्टी में नहीं हूँ। अगर मैं एक संयुक्त विपक्षी दल का भी, जिसे बनाना अपने–आप में ही कठिन है, नेता बन जाऊँ तो अपने को सीमित ही करूँगा और लोगों के बीच निराशा फैलेगी; उनकी आशा जाती रहेगी।'' अपने इसी भाषण में जेपी ने आगे कहा कि ''मैं संघर्ष के संदर्भ में ही विपक्षी दलों को साथ लाने की कोशिश कर रहा हूँ। यह संघर्ष जल्द ही अन्य राज्यों में फैल सकता है। इसमुं ज्यादा समय नहीं लगना चाहिए, क्योंकि कांग्रेसी शासनवाले राज्यों की जनता बेसब्र हो रही है। मैं विपक्षी दलों को राष्ट्रीय स्तर पर भी एक साथ लाने में जो भी मदद कर सकता हूँ, वह करूँगा। फिर कह देना चाहता हूँ कि यह ममद जन–आंदोलन के संदर्भ में ही होगी।'' बिहार आंदोलन के दौरान बहुत सारे सैद्वांतिक सवाल उठाए गए। जेपी ने उनका उत्तर सिर्फ एक सधे हुए राजनीतिक नेता की तरह ही नहीं दिया, बल्कि एक कुशल दार्शनिक, सिद्धांतकार एवं विचारक की तरह उसे व्याख्यायित करने की कोशित की। जेपी अपनी सभाओं में एक कुशल प्राध्यापक की तरह लोगों को बताते थे। उनके भाषण में समाज और राजनीति को समझने लायक बहुत सामग्री होती थी जो कि राजनीतिज्ञों, आंदोलनकारी छात्रों–युवजनों, मीडियाकर्मियों के लिए विचारोत्तेजक खुराक होती थी। इसलिए जेपी ने देशभर में घूम–घूमकर लोगों को तैयार करने के लिए सभाएँ की। जेपी जानते थे कि लोगों को वैचारिक रूप से तैयार करके ही क्रांति को सफल बनाया जा सकता है। उनके इस सकारात्मक सोंच के कारण ही भविष्य का वास्तविक जनांदोलन बिहार आंदोलन से कुछ–न–कुछ सबक जरूर लेगा। यह बात अलग है कि आंदोलन के शीर्ष नेतृत्व में रहे लोग राजनीतिक दलों की मुख्य धारा में आकर उनके बताए रास्ते को आगे बढ़ाने में कामयाब नहीं हो सके। कुछ नेताओं ने तो जेपी की जग हँसाई ही कराई।

लेकिन ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा है जो जेपी के विचारों से प्रेरणा लेकर बिना शोर मचाए अपने–अपने क्षेत्रों/कामों में लगे रहकर जेपी के आदर्शों के अनुरूप समाज को आगे बढ़ाने में सराहनीय योगदान करते रहे हैं। संपूर्णता में यदि हम देखें तो बिहार आंदोलन का भारतीय समाज के विकास में उल्लेखनीय योगदान है। यदि ऐसा नहीं होता तो देश में जब–जब भ्रष्टाचार, महँगाई, बेरोजगारी एवं शिक्षा में परिवर्तन जैसे मौलिक सवालों को लेकर आंदोलन खड़ा होता है तब जेपी प्रासंगिक होकर उभरते हैं। भ्रष्टाचार के विरोध में जब वी.पी.सिंह ने आवाज दी तो मानो ऐसा लगा कि

जेपी फिर लाठी लेकर संघर्ष के लिए खड़े हो गए हैं। जब अन्ना हजारे ने अपने अनशन के माध्यम से युवाशक्ति का आह्वान किया तो जेपी देश के हजारों–लाखों युवकों के दिल में उतर गए। क्या माना जाए कि जिस तरह महात्मा गांधी शोषण, उत्पीड़न, अन्याय के खिलाफ हुए अहिंसाक एवं शांति पूर्ण संघर्ष के प्रतीक बन गए हैं, उसी तरह जेपी भी हो गए हैं। मेरे जैसे हजारों लोगों को जेपी के विचारों ने प्रभावित किया। उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं रचनात्मक विचार से प्रभावित होकर आज भी देश के अलग–अलह हिस्से में अपने–अपने तरीके से लोग सक्रिय हैं। लेकिन मीडिया में उनकी तथा उनके कार्यों की चर्चा कम ही होती। चर्चा होती है तो सिर्फ इने–गुने वैसे राजनेताओं की जो जेपी के साथ आंदोलन में तो जरूर रहे, किंतु कभी भी उनके विचारों के अनुरूप आचरण नहीं किया। मुझे ऐसा लगता है कि ऐसी चर्चाएँ मीडिया में अधिकतर इसलिए की जाती हैं कि आंदोलन और जेपी दोनों की कमियों को उजागर कर उन्हें नकारा साबित किया जा सके। यह बताया जा सके कि आंदोलन से कुछ नहीं होता, कुछ नहीं बदलता। लेकिन ऐसे लोगों को याद रखना चाहिए कि भारतीय मानस में समुद्र मंथन की मिथकीय स्मृति है। सामान्य जन समझते हैं कि सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन समुद्र मंथन की तरह है। इससे समाज के देव और दानव दोनों की पहचान होती है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र को संचालित करने लायक कार्यकर्ता पैदा होता है जो दो–तीन दशकों तक समाज को आगे बढ़ाने में भूमिका अदा करता है। आजादी के आंदोलन से निकलने लोगों ने सत्तर के दशक तक बखूबी अपनी भूमिका निभाई। उसके बाद शून्यता आने लगी तो 1974 में जेपी की अगुवाई में आजादी की दुसरी लड़ाई हुई। इस आंदोलन से निकले लोग अपनी भूमिका अब तक निभाते आ रहे हैं। लेकिन वे भी अब उम्र की ढलान की स्थिति में है। इसलिए अब फिर से एक नए तरह के आंदोलन की जरूरत आ पड़ी है। लेकिन परिस्थितियाँ पहले से बिल्कुल भिन्न है। नवउदारवाद के कारण वर्षों की बनी हमारी आर्थिक संरचना ध्वस्त होती दीख रही है। हमारे जीवन के स्थापित मूल्य तिरोहित होते जा रहे हैं। यही नहीं, 'आर्थिक सुधार' जैसे शब्दों के अर्थ तक बदलने लगे हैं। कल तक हम 'आर्थिक सुधार' का अर्थ पूँजी के बढ़ते प्रभाव को रोकने तथा आदमी–आदमी के बीच की गैरबराबरी के अंतर को कम करने में देखते थे। व्यक्तिगत पूँजी का राष्ट्रीकृत होना सुधार माना जाता था। इंदिरा गांधी ने निजी बैंकों को राष्ट्रीयकरण किया तो उसके पीछे गरीबी दूर करने जैसे तर्क दिए गए थे। तब भी आर्थिक सुधार की बात की गई थी। अब चालीस वर्षों में 'आर्थिक सुधार' शब्द का अर्थ पूरी तरह बदल गया है। अब विदेशी और निजी पूँजी का अबाध निवेश आर्थिक सुधार माना जाने लगा है। गरीबी–अमीरी के बीच अंतर को बढ़ानेवापले हर नीतिगत फैसले 'आर्थिक सुधार' के फैसले माने जाने लगे हैं। बिहार आंदोलन के घोषणा–पत्र में 'एक और दस' के अंतर के बीच लोगेां की आय को बाँधने की बात की गई थी। तब इससे यादा अंतर बेचैन करता था। आज एक और करोड़ का अंतर भी हमें उद्वेलित नहीं करता है, यह आर्थिक सुधार लगता है। संपत्ति की सीलिंग, भूमि की हदबंदी, प्रिवीपर्स की वापसी जैसे तबके आर्थिक सुधार के मुद्दे आज के नवउदारवादी आर्थिक विकास में रोड़े अटकानेवाले लगने लगे हैं। सादगी और मितव्ययिता जो कभी हमारे जीवन के आदर्श माने जाते थे, आज के उपभोक्तावादी संस्कृति में उपहास और अट्टहास के प्रतीक बन गए हैं। मनुष्य और प्रकृति विरोधी संस्कृति के आज हम गुलाम बनते जा रहे हैं। भारत की

स्थापित पूरी राजनीतिक दलीय जमात की सोच इसके अनुकूल बन गई है। पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों एक ही थैली के चट्टे–बट्टे दिखते हैं। सिद्धांत और विचारों का अंतर कब का खत्म हो चुका है। इसके विपरीत जो भी अपनी बात देसी और क्षेत्रीय अनुभव के आधार पर रखने की कोशिश करता है उसे प्रतिगामी और दकियानूस करार देकर दरकिनार करने की कोशिश की जाती है। समाजवादी समाज एवं कल्याणकारी सरकार की अवधारणा बीते दिनों की बात हो चुकी है। सरकार की पूँजीवादी एवं नवउदारवादी नीति का ही परिणाम है कि भारत का किसान अत्यधिक उत्पादन करने के बाद भी आमदनी के मुकाबले अत्यधिक लागत और कर्ज के बोझ से भुखमरी के शिकार है। किसान लाखों की तायदाद में आत्महत्या करने को विवश है। वहीं, जल, जंगल, जमीन और खनीज संपदा को देशी–विदेशी बहुदेशीय कंपनियों को लूट की छूट सरकार ने दे रखी है। प्राकृतिक संसाधनों की इस लूट में कथित रूप से सरकार के प्रधानमंत्री सहित अनेक काबीना मंत्रियों से लेकर कई राज्यों के मुख्यमंत्रियों समेत पक्ष–प्रतिपक्ष के नेता एवं अफसरों की संलिप्तता एक निर्लज्ज गठजोड़ के रूप में जगजाहिर हो चुकी है। भ्रष्ट व्यवस्था के बावजूद कई मंत्री संगीन आर्थिक अपराधों के चलते जेल यात्रा कर चुके हैं और न जाने कितने अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भारत के आजादी के समय भारतीय अर्थव्यवस्था तथा समाज की जिन बुनियादी कमजोरियों की पहचान की थी, उन्हें दूर करेन की कोशिश किए जाने की अगर तब कोई उम्मीद की गई थी तो वह निश्चित ही अभी पूरी नहीं हुई है। सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर बेशक ऊँची रही है, लेकिन अर्थव्यवस्था की बुनियादी अर्थव्यवस्था की बुनियादी खामियों की उपेक्षा ही होती रही है। उदाहरण के लिए गरीबों के लिए बेहद मदगार कदम यह हो सकता है कि बेरोजगारों को रोजगार दिया जाए, मगर यह कदम उठाने की जगह सरकार बहुत से गैरजरूरी कार्यक्रम में उलझी रहती है। इससे गरीबों को ही सबसे ज्यादा चोट पहुंचती है।

वैसे सार्वजनिक नीतियाँ अपने आपमें उन लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं से ही उभरती हैं जिनमें सरकार के अलावा विभिन्न गैर–सरकारी संस्थाओं की भागीदारी होती है। लेकिन इन दिनों देश में जो कुछ चल रहा है उसके कारण इस मामले को लेकर चिन्ता करने की वजहें स्पष्ट हैं। लोकतंत्र तो कई तरह से जीवित है लेकिन भारतीय लोकतंत्र के कारोबार में निरंकुशवादी प्रवृत्तियाँ मजबूती से दाखिल कर दी गई हैं।

संदर्भ :–

1. (2015), इनटोलेरन्स अमान्ग की फैक्टर्स फॉर भाजपा'स डिफीट : लीडर्स, दि टाइम्स ऑफ इन्डिया रीट्रीव्ड फ्रॉम http//timesofindia.indiatimes.com/elections / bihar-elections-2015/news /Intolerance-among-key - factors for BJPs defeat Leaders / articles how / 49710453.cm (एक्सेस्ड ऑन 27 जून 2016)
2. बाग्ची, सार्थक (2015) अ टेल ऑफ टू कैम्पेन्स दि हिंदू सेन्टर फॉर पॉलिटिक्स एंड पब्लिक पॉलिसी रीट्रीव्ड फ्रॉम : http://www.thehinducentre.com/the-areana / currentissues / articles7826538.ece (एक्सेस्ड ऑन 5 फरवी 2016)

3. कुमार, संजय एंड श्रेयस सरदेसाई (2015) व्हाई डीड लालु'स पार्टी फेअर बेटर दैन नीतीश 'स डिसपाइट दि लेटर'स इमेन्स पॉपुलरिटी? द इन्डियन एक्सप्रेस, रीट्रीव्ड फ्रॉम http//indianexpress.com / article/india/india-news-india / bihar-post-poll-survey-nitish-kumar-core-vote-transfers-better-than-lalus-does /¼एक्सेस्ड ऑन 2 मार्च 2016)

4. मिश्रा ज्योति एंड अस्मिता आसावारी (2015) बिहार पोस्ट पोल सर्वे : वूमेन डिड मेक इम्पैक्ट बट ऑन्ली टू एन एक्सटेन्ट. द इन्डियन एक्सप्रेस रीट्रीव्ड फ्रॉम : http//indianexpress.com / article/india/india-news-india / bihar-post-poll-survey-women-did-make-impact-but-only-to-extent/(एक्सेस्ड ऑन 24 जून 2015)

5. शास्त्री, संदीप एंड विभा अत्रि (2015). अ कम्पलिट गाइड टू बिहार इलेक्शन्स, क्वार्टज इन्डिया, रीट्रीव्ड फ्रॉम : http//qz.com/516722/a-complete-guide-to-the-bihar-elections/(एक्सेस्ड ऑन 27 जून 2016)

6. वैष्णव, मिलन एंड सक्षम कोसला (2015) http//qz.com/516722/a-complete-guide-to-the-bihar-elections/(एक्सेस्ड ऑन 27 जून 2016)

7. वर्मा, राहुल एंड श्रेयस सरदेसाई (2015): दलित्स डम्प एनडीए, रूरल बिहार स्टेट्स ऑउट ऑफ इट्स रिच. द इन्डियन एक्सप्रेस रीट्रीव्ड फ्रॉम : http//indianexpress.com / article / india/ india-news-india/bihar/post-poll-survey-dalits-dump-nda-rural-bihar-stays-out-of-its-reach/(एक्सेस्ड ऑन 2 जनवरी 2016)

8. वर्मा, राहुल एंड श्रेयस सरदेसाई (2015) बिहार पोस्ट–पोल सर्वे : बोथ कॉस्ट एंड डेवलपमेंट, व्यूव्ड थ्रो आइडेन्टिटी लेन्ज. द इन्डियन एक्सप्रेस. रीट्रीव्ड फ्रॉम : http//indianexpress.com / article / india/ india-news-india/bihar/post-poll-survey-both-caste-and-development-viewed-through-identity-lens/reach/(एक्सेस्ड ऑन 2 जनवरी 2016)